ॐ

बलिदान–चित्रावली।

मरना भला है उसका जो जिये अपने लिये।
जीता है वो जो मर चुका हो कौमके लिये।

सम्पादक—

पं० रामगोपाल विद्यालङ्कार।

भूतपूर्व सम्पादक 'प्रणवीर' (नागपुर)।

प्रकाशक—

गोविन्दराम हासानन्द वर्मा, कलकत्ता

और

राजपाल, लाहौर।

प्रथम बार	श्रीमद्दयानन्दाब्द १०३	मूल्य ॥।)
२०००	विक्रमी संवत १९८३	बारह आने।

प्रकाशक—
गोविन्दराम हासानन्द, कलकत्ता
राजपाल, लाहौर।

पुस्तक-प्राप्तिके स्थान :—

१—वैदिक पुस्तकालय,
८।१ रामकुमार रक्षित लेन, कलकत्ता।

२—राजपाल,
आर्य पुस्तकालय तथा सरस्वती आश्रम, लाहौर।

३—आर्य पुस्तकालय,
नयी सड़क, देहली।

४—खूबचन्द बुकसेलर
इसटोलके पास, शिकापुर (सिन्ध)

मुद्रक—
गोबिन्दराम वर्मा,
वैदिक प्रेस ८।१ रामकुमार रक्षित लेन
कलकत्ता।

* ओ३म् *

बलिदान—चित्रावली।

प्राक्कथन।

संसारमें जो जन्म लेता है वह मरता भी अवश्य है। परन्तु सबकी मृत्यु एकसी नहीं होती। एक पुरुष वे होते हैं कि जिनकी मृत्युका मनुष्य-समाजमें कोई प्रत्यक्ष परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता और दूसरे पुरुष वे होते हैं कि जिनकी मृत्युसे समाजोंमें विशाल परिवर्तन हो जाते हैं, राष्ट्रोंमें क्रान्ति मच जाती है और संसारमें हलचल दिखायी देने लग पड़ती है। पहिली श्रेणीके लाखों ही पुरुषोंकी मृत्युयें संसारमें प्रतिदिन होती हैं परन्तु मनुष्य समाजमेंसे उनकी गिनती कम हो जानेकी किसीको खबर तक नहीं लगती, संसारका सब कारबार मामूली तरीकेपर चलता रहता है; परन्तु दूसरी श्रेणीके पुरुषोंमेंसे कभी कदास बरसोंमें एकाधकी मृत्यु होती है और समाजका प्रत्येक व्यक्ति उसके अभाव का अनुभव करने लग जाता है, लोगोंके कारबार बन्द हो जाते हैं और बहुधा उस महा-पुरुषके कार्यकी पूर्तिके लिये तमाम समाज उठ खड़ा होता है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है कि उक्त दूसरी श्रेणीके महापुरुष अपने लिये नहीं जीते वे समाज, राष्ट्र, मनुष्य जाति और सिद्धान्तोंके लिये जीते हैं और उन्हीके लिये मरते हैं। वे मरते हुए अपने प्रिय आदर्शोंके लिये प्राण न्योछावर करके दुनियांके सामने एक नमूना रख जाते हैं जिसको देखकर अन्य मनुष्योंको भी उनके आदर्शकी पूर्तिके लिये उत्साह होता ह। यही कारण है कि बहुधा जो कार्य महापुरुषोंके जीवनसे सिद्ध नहीं होते, वे उनकी मृत्युसे हो जाते हैं। इसलिये उनकी मृत्युओंको मृत्यु न कह कर बलिदान कहा जाता है। भारतवर्षका इतिहास इस प्रकारके बलिदानोंकी कथाओंसे भरा पड़ा है। यदि इन सब बलिदानोंकी कथाओंका संग्रह किया जाय तो एक 'बृहत्कथा-सरितसागर' बन जाय। इस 'बलिदान-चित्रावली'के रूपमें उसी सागरके अमृतकी एक अंजलिमात्र हम अपने पाठकोंकी सेवामें अर्पण कर रहे हैं। इस अंजलिमें केवल उन्हीं बलिदानोंका संग्रह किया गया है जो अपेक्षाकृत आधुनिक हैं और इसी कारण अधिक प्रसिद्ध हैं। यदि इस चित्रावलीसे पाठकोंका कुछ भी मनोरञ्जन हुआ और उन्होंने हमें उत्साहित किया तो और भी पुष्पोंकी अञ्जलि उनकी सेवामें उपस्थित की जायगी।

गुरु तेग़बहादुर।

यह सिखोंके नौवें गुरु थे। परन्तु सिखोंके सन्मुख धर्मपर बलिदान होनेका उदाहरण रखने वालोंमें इनकी गणना प्रथम है। इनका जन्म मार्गशीर्ष संवत १६७८ विक्रमी में शहर अमृतसर में हुआ था। सिखोंके छठे गुरु हरगोविन्दजीके यह सबसे छोटे पुत्र थे। इनकी माताका नाम था नानकी। इनका विवाह उस समयकी रीतिके अनुसार आठ वर्षकी आयुमें ही हो गया था।

संवत १७२१ में आठवें गुरु हरकिशन का देहलीमें चेचकके रोगसे देहान्त हुआ। देहांतसे पहिले ही उन्होंने अपने एक शिष्यको एक नारियल और पांच पैसे देकर तेग़बहादुरके पास गुरुकी गद्दीके सब चिन्ह भेज दिये थे। गुरु बननेके एक वर्ष बाद उस समयकी परिस्थिति के अनुसार अपने सब शिष्योंको संगठित तथा धर्मप्रचार करनेके लिये इन्होंने एक लम्बा दौरा लगाया।

दौरेसे लौटकर जब गुरु पंजाब पहुंचे तब अनेक लोगोंने बादशाह औरंगजेबके जुल्मकी शिकायत की। काश्मीरके बहुतसे ब्राह्मण भी इनके पास रक्षार्थ पहुंचे। इन्होंने उनकी पुकार सुनकर कहा कि इस समय धर्मकी रक्षाके लिये किसी सच्चे धार्मिक महापुरुषके बलिदानकी आवश्यकता है। कहते हैं कि उस समय इनका पुत्र गोबिन्दसिंह इनके पास बैठा था। उसने कहा कि पिताजी आपसे बढ़कर सच्चा धार्मिक महापुरुष कौन हो सकता है। बस, इनके दिलको यह बात लग गयी और यह अपने पांच सौ शिष्योंके साथ देहलीकी ओर चल दिये। बाकी शिष्योंको तो रास्तेमें ही छोड़ दिया, केवल पांचके साथ यह आगे बढ़े। आगरा पहुंचने पर औरङ्गजेबके दूतोंने इन सबको गिरफ्तार कर लिया। देहली ले जाकर इनको कोतवालीके पास एक मकानमें बन्द रखा गया। प्रसिद्ध है कि वह मकान वहीं था जहां आजकल चांदनी चौकमें सिखोंका गुरुद्वारा है। औरङ्गजेबने पहिले तो इनपर कई प्रकार से मुसलमान होनेके लिये जोर दिया परन्तु जब ये नहीं माने तो इनके साथ आये हुए पांचों शिष्यों को अत्यन्त अमानुषिक क्रूरताओंके साथ मारा गया। मोतीदास नामके शिष्यको जिन्दाही आरे से चिरवाया गया। भाई दयालाको लोहेके गरम डेगमें डलवा कर भुनवा डाला। और अन्य तीनों के साथ भी ऐसे ही क्रूर व्यवहार किये गये। अन्तको गुरु तेग़बहादुरका भी सिर काटने का हुक्म हुआ। यह उस समय बरगदके पेड़के नीचे बैठे जपजीका पाठ कर रहे थे। जल्लाद आया और सिर धड़से अलग कर दिया। इनके शरीर को गुरुके दो शिष्य, जो बाप और बेटा थे, बड़ी वीरतासे गुरु गोबिन्दसिंहके पास लाये। कथा है कि शाही पहरेदारोंके सन्देहसे बचनेके लिये बाप का सिर और धड़ जुदा करके तेग़बहादुरके सिर और धड़की जगह रख दिये गये और बेटेने गुरुके सिर और धड़को गुरु गोबिन्दसिंहके पास पहुंचा दिया। यह घटना संवत १७३१ की है।



सिखोंके नौवें गुरु तेगबहादुरजी का कटा हुआ शिर अलग उल्लादके हाथ में ।



फतहसिंह और जोरावरसिंह जीते जी दीवारमें चुने जा रहे हैं।

गुरु गोबिन्दसिंहके पुत्रोंका आत्मोत्सर्ग।

गुरु तेगबहादुर के कत्लसे (उनके पुत्र, सिखोंके दसवें गुरु) गुरु गोविन्दसिंह को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने पंजाबसे मुगल राज्यको उठा देनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। इस संकल्पकी पूर्तिके लिये उन्होंने बड़ी भारी सेनाका संगठन किया और अनेक स्थानों पर मुगलोंको पराजित किया। उन्होंने अपने को राजा घोषित करके, आनन्दपुर, नाहन और चमकौर नामके स्थानोंपर अपने तीन किले भी बनवाये। इससे दिल्लीके बादशाह औरङ्गजेबको बड़ी चिन्ता हुई। उसने लाहोर और सरहिन्दके सूबेदारोंको मिलकर गुरु गोबिन्दसिंहको दबानेका हुक्म भेजा। तदनुसार गुरु गोबिन्दसिंह पर इन दोनों सूबेदारोंकी सम्मिलित शक्तिने हमला किया और उनको आनन्दपुरके किलेमें जा घेरा। उस समय गुरु गोबिन्द सिंह बड़ी कठिनाईमें पड़ गये और अन्य उपाय न देखकर उन्होंने जोरावरसिंह और फतहसिंह नामके अपने दो छोटे पुत्रों और माता गूजरीजी को चुपचाप किलेसे निकालकर घरके एक पुराने रसोइये गंगू ब्राह्मणके साथ बाहर भेज दिया। नहीं मालूम कि ब्राह्मण नामके साथ ही लालच स्वार्थ और विश्वासघातका कुछ सम्बन्ध है या क्या, कि गंगू ब्राह्मणने भी वही किया जो हिंदुस्थानके इतिहासमें अनेक नीच कुत्सित ब्राह्मण कर चुके हैं। तीस वर्षसे जिस घरानेने उसे आश्रय दिया था, उसने उसीके नन्हे नन्हे बालकों के साथ क्रूर विश्वासघात किया।

गूजरीजीके पास कुछ जवाहिरात और आभूषण थे। इन पर अपनी जातिके स्वाभाविक गुणानुसार नीच गंगूका मन चल गया और उसने जाकर मुसलमान अधिकारियोंको गुरु गोबिन्दसिंहकी माता तथा छोटे पुत्रोंके विषयमें खबर कर दी। जवाहिरात तो गंगूके हाथ क्या लगने थे! वे तो लुटेरे मुसलमान शासकोंके हिस्सेमें आये, परन्तु गूजरी जी अपने पोतों सहित गिरफ्तार करके सूबा सरहिन्द वजीरखां के सामने पहुंचायी गयीं। इस वजीरखांको गुरु गोबिन्दसिंहने कई बार हराया था। इस कारण यह उनसे जला बैठा था। उनके बेटोंको अपने सामने कैद देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इन तीनों को उसने किलेके एक बुर्जमें कैद कर दिया और काजियोंसे सलाह करके लड़कोंसे कहा कि तुमको या तो मुसलमान बनना पड़ेगा और या तुम जीते जी दीवारमें चिन दिये जाओगे। वीर पुरुष के वीर पुत्रोंने शत्रु का धर्म स्वीकार करनेकी अपेक्षा दीवारमें चिना जाना अधिक सम्मानास्पद समझा। वजीदखांने उनको सरहिन्दमें ही जीते जी दीवारमें चिनवा दिया। गुजरीजी यह समाचार सुनते ही मूर्छित हो गयीं और किलेके बुर्जसे गिरकर मर गयीं। जोरावरसिंह और फतहसिंहकी आयु इस समय क्रमशः सिर्फ ८ और ६ वर्षकी थी।

वीर वैरागी बन्दा।

गुरु गोविन्दसिंहने पंजाबसे मुसलमानों की शक्तिको उखाड़ देने का जो पुण्य कार्य आरम्भ किया था उसको पूरा वीर वैरागी बन्दाने किया। वीर वैरागी बन्दाका जन्म का नाम लक्ष्मणदेव था। यह पंजाबकी पहाड़ी रियासत पोंछमें एक राजपूतके घर उत्पन्न हुआ था। अपनी नौजवानीकी उम्रमें ही लक्ष्मण वैरागी बनकर साधुओंकी एक मण्डलीके साथ दक्षिणकी ओर चला गया।

जब गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुरकी लड़ाई में पराजित होकर निराशाकी अवस्थामें भटकते हुए दक्षिण पहुंचे तब वहां इनकी लक्ष्मण वैरागीसे भेंट हुई। दोनोंका मिलाप क्या हुआ पारस और लोहेका मेल हो गया। गुरु गोविन्दसिंहने लक्ष्मण वैरागीके वीरताके गुणोंको परख कर उसे आज्ञा दी कि पंजाबमें जाकर मुसलमानोंकी शक्तिका नाश करो। लक्ष्मण वैरागीने उसी समयसे अपने आपको गुरु गोविन्दसिंहका बन्दा अर्थात् दास माना था, इस कारण यह इतिहासमें वीर बन्दाके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ।

वीर वैरागी बन्दा ने दक्षिणसे रवाना होते ही सैन्य-संग्रह आरम्भ कर दिया और बराबर मुसलमानोंसे लड़ते लड़ते पंजाब पहुंचा। इस कारण पंजाब पहुंचते ही गुरु गोविन्दसिंहके बिछुड़े हुए सिंह सिख बन्दाके साथ हो गये और मुसलमानोंके दिलमें हौल बैठ गयी। बन्दा कई बार तमाम पंजाब प्रांतमें आंधीकी तरह घूम गया और जहां कहीं कोई मुसलमान मिला उसका सिर उड़ाकर साफ कर दिया। उसने ऐलान कर दिया था कि जो कोई चोटी और जनेऊ दिखा देगा वह बच जायगा, नहीं तो उसका सिर धड़से जुदा कर दिया जायगा। उसका पंजाबमें ऐसा आतङ्क छा गया था कि लाखोंकी तादादमें मुसलमान आ आकर उसके शिष्य बनने लगे। परन्तु इतने विजय करके भी बन्दा वैरागी ही बना रहा। उसने एक विवाह कर लेनेके अतिरिक्त किसी किस्मके राज-पाटका भोग नहीं किया।

जब बन्दाके विरुद्ध सब चालें विफल हो गयीं, तब दिल्लीके बादशाह फर्रुखसियरने सिखों में फूट डालने का अन्तिम अस्त्र फेंका और इसमें उसे पूरी सफलता मिली। गुरु गोविन्दसिंहकी स्त्री सुन्दरीजी उन दिनों दिल्लीमें ही रहती थीं। उनकी खुशामद और इज्जत करके उनको फर्रुखसियरने अपनी तरफ मिला कर उनसे सिखोंके नाम एक पत्र लिखवाया कि बन्दा स्वयं गुरु बनना चाहता है, उसका किसी भी सिखको साथ न देना चाहिये। इस पत्रके द्वारा सिखोंमें इतना पतन हुआ कि बहुत से सिखोंने ॥) मासिक वेतन पर सिपाही की और १) मासिक पर हवलदारीकी नौकरी बादशाही फौजमें की। अन्त को वीर बन्दा और उसके साथियोंको गिरफ्तार



वीर बन्दा



वीर वैरागी बन्दाबहादुर

बलिदानका अद्वितीय दृश्य ।



बालक हकीकतराय बड़े नाज़िमकी अदालत में



हकीकतराय का वध हो चुकने पर उसके माता पिताका विलाप।

करके दिल्ली लाया गया और वहां उसके सामने प्रति दिन सौ सौ बहादुरोंका सिर धड़से जुदा किया जाने लगा। जब बन्दाके सब साथी कत्ल किये जा चुके तब उसके पुत्रको उसके पांवोंमें फेंककर कहा गया कि तुम अपने हाथसे इसका वध करो। इस अवस्थामें भी बन्दाको उसी प्रकार दृढ़ देखकर उसके पुत्रकी छाती छुरीसे चीर कर दिल बाहर निकाला गया और उसके टुकड़े टुकड़े करके बन्दाके मुंहपर फेंके गये। इसके अनन्तर लोहेकी सलाखें लाल तपा कर उनसे उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों को बोटी बोटी दाग दाग कर उसका शरीरांत किया गया। परन्तु वाहरे वीर बन्दा बहादुर! तूने उफ तक न की !!

बाल-वीर हकीकतराय 'धर्मी'।

पंजाब प्रांतमें ऐसा हिन्दू बालक विरला ही होगा जिसने स्याना हो जानेपर भी हकीकतराय का नाम न सुना हो। इस दृढ-निश्चयी निडर बालकका जन्म सियालकोटमें संवत १७७६ विक्रमीमें, वहांके मुसलमान हाकिमकी कचहरी के मुंशी भागमल पुरी के घर हुआ था। इसने मुसलमान मुल्ला जीके मकतब में फारसी पढनेको बैठने से पहिलेही अनेक सिखोंके धर्मपर बलिदान होने की वीरतापूर्ण कहानियां सुनी थीं। इस कारण इसकी अपने धर्म पर दृढ निष्ठा थी। एक बार मकतब में हकीकतराय का किसी बातपर कुछ मुसलमान बालकों से झगडा हो गया। शरारती मुसलमान लडकोंने हिन्दू देवी देवताओंको गालियां देना आरम्भ किया। हकीकतराय से यह सहन नहीं हुआ और उसने बदलेमें मुसलमानोंके पैगम्बर मोहमदकी लडकी फ़ातिमाको गाली दी। जब इस बातकी मुल्लाजीको खबर लगी तो वह आपेसे बाहिर हो गये और हकीकतरायको पकड कर हाकिम अमीर बेगके पास लेगए। मजहबके दीवाने मुसलमान काजियों ने इस अपराधके लिये १५ वर्ष के बालकको मृत्यु दण्ड दिये जानेपर जोर दिया। परन्तु अमीर बेगके हृदय में न्यायका कुछ अंश बाकी था। उसने इन धर्मान्ध काजियों से पीछा छुडानेके लिये हकीकतका मामला लाहौरके बडे नाजिम के पास भेज दिया। लाहौरके बडे नाजिम ने फैसला दिया कि या तो वह इसलाम स्वीकार करले और नहीं तो इसका सिर धडसे उडा दिया जाय। हकीकतरायका तब विवाह हो चुका था। उसकी स्त्री ने और माता कौरांने रो रोकर हकीकतसे इसलाम स्वीकार करने के द्वारा अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये प्रार्थना की, परन्तु उस वीर बालकने प्राण छोड दिये पर धर्म न छोडा। सब हिन्दुओंके देखते देखते मुसलमान जल्लादने बालकका शिर काटकर धड़से अलग कर दिया। धर्मपर बलिदान होनेके कारण ही हकीकतरायके नामको लोगोंने 'धर्मी' की उपाधिसे भूषित किया।

धर्माभिमानी सम्भाजी।

मुगल बादशाहोंकी शक्तिके हिन्दुस्तानमें अपने शिखरपर पहुंच जानेके कठिन समयमें भी जिसने स्वतन्त्र हिन्दू राष्ट्रकी स्थापना कर महाराष्ट्र नामको सार्थक किया, उन प्रातःस्मरणीय छत्रपति शिवाजीके बड़े पुत्र सम्भाजी का जीवन चाहे धर्म और योग्य शासनकी दृष्टिसे आदर्श जीवन न हो तो भी इस धर्माभिमानी पुरुषने शत्रुके सामने अपने धर्मको छोड़ना स्वीकार नहीं किया था और इस कारण इसका वध बादशाह औरंगजेबने जिस प्रकार क्रूरतासे करवाया था उसने महाराष्ट्रमें ऐसी जागृति उत्पन्न की थी कि जबतक संसारके इतिहासमें वीरताका आदर किया जाता रहेगा तबतक मनुष्य जाति उस जागृति और वीरताकी कहानीको अत्यन्त सम्मानपूर्वक पढ़ती और सुनती रहेगी।

संवत १७३६ विक्रमीमें छत्रपति शिवाजीकी मृत्युके बाद जिस समय सम्भाजी महाराष्ट्रकी गद्दी पर बैठा उस समय देहलीका मुगल बादशाह औरंगजेब दक्षिणमें ही था। इस कारण गद्दीपर बैठते ही सम्भाजीका औरङ्गजेबसे संघर्ष आरम्भ हो गया था। सम्भाजी यद्यपि वीर और निर्भीक था परन्तु योग्य शासक न था, इस कारण वह शीघ्र ही औरङ्गजेबका कैदी हो गया। औरङ्गजेबके हृदयमें शत्रुके लिये लेशमात्र भी दया न थी, तथापि वह चाहता था कि सम्भाजी मारा न जाय, क्योंकि उसे सम्भाजीको मुसल्मान बनानेमें सफल हो जानेकी आशा थी। परन्तु सम्भाजी आचार-पतित होने पर भी आत्म-प्रतिष्ठा और आत्माभिमानकी रक्षा करनेवाला पुरुष था। वह अपमानकी अपेक्षा मृत्युको अधिक पसंद करता था। जब औरङ्गजेबने उसे यह कहलाकर भेजा कि तुम मुसल्मान हो जाओ तो छोड़ दिये जाओगे, तब सम्भाजीने मुसल्मानोंके पैगम्बर मोहम्मदको बहुत गालियां दीं और कहा कि औरङ्गजेबको कहो कि यदि वह अपनी बेटी मुझे दे दे तो मैं मुसल्मान हो जाऊंगा। औरङ्गजेब इस पर बड़ा क्रुद्ध हुआ और आज्ञा दी कि लोहेकी सलाखें तपाकर सम्भाजीकी आंखोंमें फेरी जायं, उसकी जीभ बाहर खींच ली जाय और शिर काट कर धड़से अलग कर दिया जाय। सम्भाजी इसी आज्ञाके अनुसार तुलापुरके कैम्पमें बड़ी क्रूरतासे मारा गया।



सम्भाजी की आंखें फोड़ी और जीभ खींची जा चुकने पर उनके वधकी तैयारी।



गुरुवर दयानन्द।

(फोटो श्री महाराजा शाहपुरासे प्राप्त)

स्वामी दयानन्द सरस्वती।

भारतवर्ष में अंग्रेजोंका राज्य हो जाने पर, भारत की सभ्यता को, विदेशी सभ्यताके नये आक्रमणकी झपटों से, जिन महापुरुषोंने पिछली शताब्दीमें रक्षा की उनमें स्वामी दयानन्द का स्थान सर्वोपरि है। स्वामी दयानन्दका जन्म संवत् १८८१ विक्रमीमें काठियावाड की रियासत मोरवीके टंकारा ग्राममें कर्षनजी नामके एक जमींदार औदीच्य ब्राह्मणके घर हुआ था। इनका जन्म-नाम मूलशंकर था, परन्तु बोल चाल में इनके सम्बन्धी इनको मूलजी और दयालजीके नामोंसे भी पुकारते थे। बचपन में ही इनके पिताने इनको संस्कृतके बहुतसे श्लोक और वेदमंत्र कण्ठ करा दिये थे तथा धार्मिक उपाख्यान कथायें आदि सुनाकर बालक मूलशंकरके विचार धर्ममें दृढ किया करते थे। परन्तु मूलशंकरकी बुद्धि साधारण बालकोंको सी न थी कि जो उनको सुनाया जाता चटसे उसीपर आंख मींच कर चलने लग जाते। आरम्भसे ही प्रत्येक बात पर स्वतंत्र विचार करनेका उनका स्वभाव था। और इसके साथ ही उनकी यह भी आदत थी कि जो करते थे उसे पूरे मनसे करते थे। चौदह वर्षका आयुमें जब उनके पिताने उनसे शिवरात्रि की पूजाका व्रत कराया तब यह व्रत भी उन्होंने बहुत श्रद्धा भक्ति के साथ किया। रात्रिको और सब लोग तो धीरे धीरे ऊंघते ऊंघते सो गये परन्तु मूलशंकर आंखों पर पानीके छींटे दे देकर जागते रहे। इसी समय उन्होंने एक चूहेको शिवकी मूर्तिपर चढावेमें चढाये हुए भोज्य पदार्थ खाते हुए देखा। यह देख उनके मनमें नाना संकल्प विकल्प उठने लगे कि क्या यह वही सर्वशक्तिमान शिव है जिसकी पिताजीने इतनी महिमा सुनाई थी? यह तो अपनी एक नन्हेसे चूहे तकसे रक्षा नहीं कर सकता इत्यादि। उन्हों ने इन शंकाओंका समाधान अपने पिताजीसे किया, परन्तु उनके उत्तरोंसे मूलजीके मनको कुछ संतोष न हुआ और उनका विश्वास मूर्तिपूजामें शिथिल हो गया। इस घटनाके थोडे समय बाद ही मूलशंकरके चाचा और बहिनकी मृत्यु होगई। इन मृत्युओं पर घरके और आदमी तो रोने पीटने लगे परन्तु मूलशंकरके मनमें यह आया कि यदि इसी प्रकार सबको अन्तमें मर जाना है तो इस मनुष्य-जन्मका लाभही क्या? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे मनुष्य इस मृत्युके दुःखसे छुटकारा पा सके? इन विचारोंसे प्रेरित होकर मूलशंकर घर छोडकर सत्यकी खोजमें निकल पडे। संसार से उनको वैराग्य हो गया और वह सन्यासी बन गये। उनको जहां कहीं किसी योगी विद्वान के होने का समाचार मिलता, वह वहीं जा पहुंचते और उस विद्वान से शास्त्र तथा योगका अध्ययन करते। इस प्रकार उन्होंने ३५ वर्ष का आयुतक कई गुरुओंकी शिष्यता स्वीकार की,

कई जंगलों, गांवों और शहरोंमें वह भटके, परन्तु उनको कहीं संतोष न हुआ, कहीं भी उनको वह पदार्थ न मिला जिसको खोजमें वह घर बार छोड़ कर सन्यासी हुए थे। ३५ वर्षकी आयुमें वह मथुरा पहुंचे और वहां प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्दकी विद्वत्ताकी ख्याति सुनकर उन्हींके शिष्य हो गये। इनको शिष्यता से स्वामी दयानन्दको पूर्ण संतोष हुआ और इनके चरणोंमें विद्याध्यनको समाप्ति कर अपने गुरुकी आज्ञानुसार ऋषि दयानन्द मनुष्यमात्रके कल्याणके लिये सत्य धर्म का प्रचार और अविद्याका नाश करनेको निकल पड़े। दो तीन वर्ष उन्होंने स्थान स्थान पर घूम कर यथामति सत्य वैदिक धर्मका प्रचार किया परन्तु सम्वत् १९२४ के कुम्भके मेलेमें उन्होंने हरिद्वारमें देखा कि हिन्दू जातिकी दशा अत्यन्त पतित हो गयी है, उसके अन्दर अनन्त पाखण्ड फैल गये हैं, उन सबके उन्मूलनके लिये बहुत शक्तिका आवश्यकता है और अभी अपनेमें इतनी शक्ति नहीं है। यह सोच विचारकर स्वामीजीने शक्ति-संग्रहके लिये घोर तप करनेका निश्चय किया वह इस समयसे २२॥ वर्ष तक लगातार गङ्गाके किनारे किनारे शरीर पर केवल विभूत रमाकर ध्यानमें मग्न रहते हुए घूमने रहे। इस कालके भीतर उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया था। यहां तक कि संस्कृत व्याकरणका अष्टाध्यायी महाभाष्य नामका पुस्तक भी मथुरामें गुरु विरजानन्दके पास भिजवा दिया था। इस तपस्याके अनन्तर स्वामीजीने ग्राम ग्राम नगर नगरमें घूम घूमकर सत्य धर्मका प्रचार पुनः आरम्भ किया। इस प्रचार-कार्य की विशेषता यह थी कि यद्यपि स्वामीजी प्राणीमात्रको प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे तथापि वह असत्यके खण्डन और सत्यके मण्डनमें किसीका कभी लिहाज नहीं करते थे। उनको इस स्पष्टवादिता और निर्भीकताके कारण उनपर विरोधियोंने कई बार शस्त्र आदिसे भी आक्रमण करने के यत्न किये परन्तु उनकी तेजोमयी मूर्तिके सामने पहुंच कर किसीका साहस ही न होता था कि उनपर आक्रमण करे। हरिद्वारमें कुम्भके मेलेके अवसर पर राव कर्णसिंह बड़गूजरने एक बार तलवारसे आक्रमण करना चाहा था परन्तु स्वामीजीने तलवार छीनकर तोड़ डाली। उनकी इस निर्भीकता, वीरता और तेजको देखकर विरोधियोंने स्वामीजीके साथ छल चलना आरम्भ किया। एक बार अनूपशहर (जि० बुलन्दशहर) में एक आदमीने स्वामीजीको पानके बीड़ेमें विष दिया परन्तु स्वामीजीने मालूम हो जाने पर हठयोगकी न्योली क्रिया कर ली और पेटको विषके प्रभावसे शुद्ध कर डाला। जब स्वामीजी महाराज अमृतसर गये तब विरोधियोंका स्वयं तो स्पष्टतासे कुछ करनेका साहस हुआ नहीं, छोटे छोटे लड़कोंको मिठाईका लालच देकर उनसे व्याख्यानमें ईंट पत्थर बरसवा दिये। परन्तु ये सब बातें स्वामी दयानन्दके बढ़ते हुए प्रभावकी ही सूचक थीं। जब विरोधियोंसे कुछ नहीं हो सकता था तब वे स्वामीजीका अपमान करने अथवा उनके शरीरको नुकसान पहुंचाने की कोशिश करते थे।

स्वामी दयानन्दकी कीर्ति सुनकर जहां बड़े बड़े विद्वान् और रईस आदि उनके दर्शन करनेके



महर्षि दयानन्द सरस्वती मृत्यु शय्यापर ।

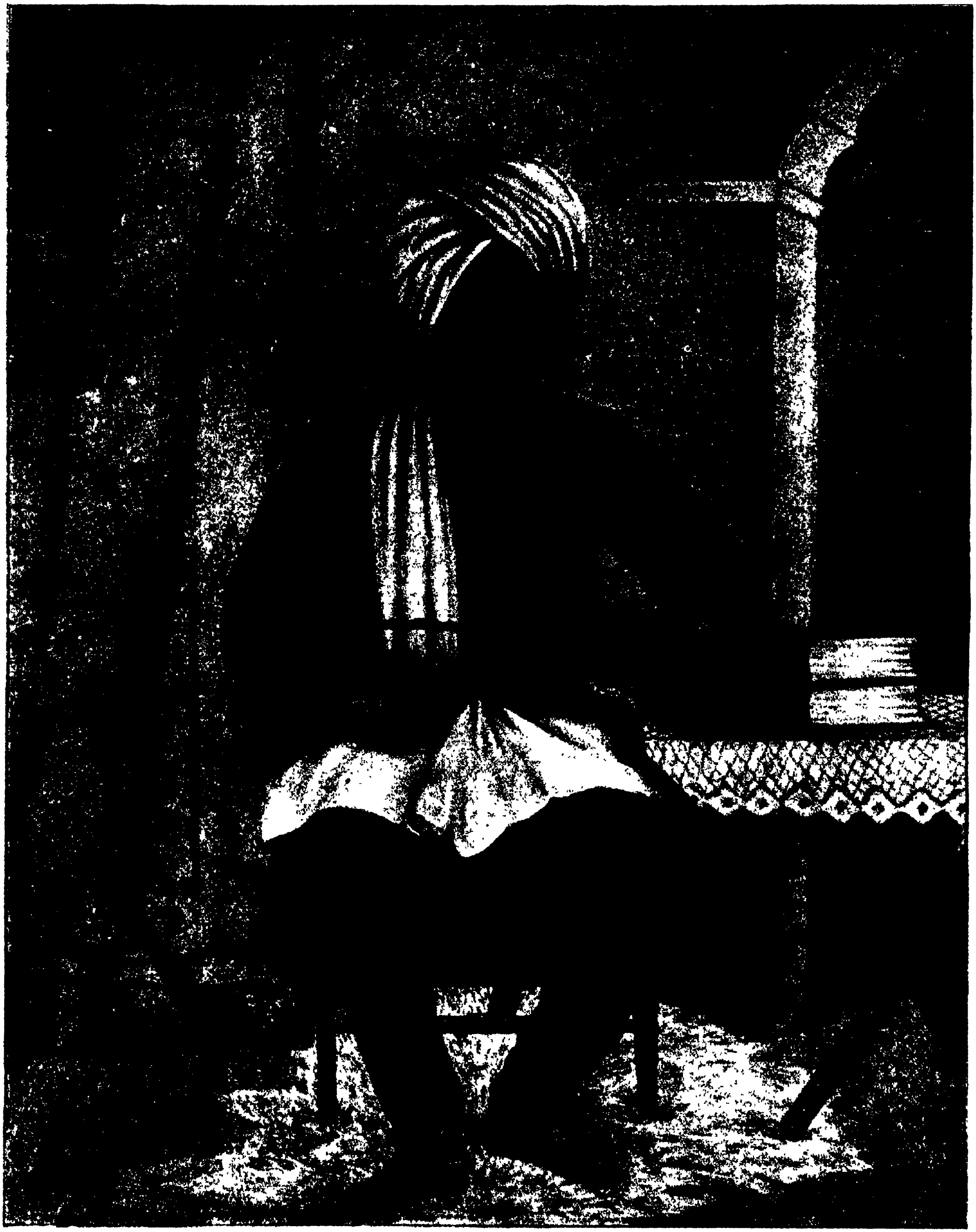
लिये उत्सुक रहते थे वहां बहुतसे हिन्दुस्थानी राजाओं में भी स्वामी जीके सतसंग और दर्शनों के लिये उत्सुकता बढ रही थी। उनमें से कइयों ने बार बार स्वामीजीको अपनी अपनी रियासतों में निमन्त्रित किया था। उनके निमंत्रणको स्वीकार करके संवत १९३४ में राजपूतानाकी रियासतोंका दौरा आरम्भ किया। जयपुर, उदयपुर, भरतपुर और शाहपुरा आदिके राजाओंके चरित्रों को सुधारा तथा उनको राजनीति का उपदेश देकर उनका ध्यान उचित रूपसे प्रजापालनकी ओर आकृष्ट किया। शाहपुर के महाराज स्वामीजी के उपदेशों से विशेष प्रभावित हुए थे। उन्हों ने स्वामीजाकी शिष्यता स्वीकार की थी और कई मास तक उनसे धर्म शास्त्रका अध्ययन भी किया था। इस कारण वह स्वामीजीके बहुत हितचिंतक थे। जब शाहपुरासे स्वामीजी जोधपुरको प्रस्थान करने लगे तब महाराज शाहपुरने स्वामीजीसे निवेदन किया कि जोधपुर में आप तीव्र खण्डनसे कार्य न लें, वहां के लोग बहुत क्रूर होते हैं, कहीं वे आपके शरीरको किसी प्रकारको हानि न पहुंचावें। स्वामी दयानन्दने बडी निर्भीकतासे उत्तर दिया कि मैं तो सत्यका प्रचार करता फिरता हूं, जहां तलवार से काम लेनेकी आवश्यकता होती है वहां मैं नहेरनेका उपयोग नहीं करता। यदि वे लोग मेरी अंगुलियों की बत्तियां बनाकर जलावेंगे तो भी मैं अपने शरीरके कष्टसे सत्य कहने में आगा पीछा नहीं करूंगा। यह निधडक उत्तर सुनकर महाराज शाहपुर चुप रह गये और बडे दुःखो हृदय के साथ स्वामीजी से विदा ली।

जोधपुर में वहांके राजाको ओरसे स्वामी दयानन्दके स्वागतका बहुत उत्तम प्रबन्ध किया गया था। रावराजा तेजसिंहको स्वामीजी के रहन सहन को व्यवस्था देखने का भार विशेष रूपसे सौंपा गया था। स्वामीजीका विचार जोधपुर में कुछ अधिक समय तक रहकर वेद भाष्यादि ग्रन्थ-रचनाका कार्य करनेका था। इस कारण महाराजा यशवंतसिंहजीने उनके रहन सहनको उसीके अनुकूल व्यवस्था करा दी थो। जोधपुर में स्वामीजाको पहुंचने के सत्रहवें दिन महाराजा स्वयं स्वामीजीके सेवामें उपस्थित हुए और तीन चार घण्टे तक उनसे मनुस्मृतिमें वर्णित राजधर्मका उपदेश श्रवण किया। स्वामीजीकी बहुत इच्छा थी कि जोधपुरके महाराजा अपना आचरण सुधारकर रियासतके शासनकी ओर यथोचित ध्यान दें। महाराजाके वेश्यावृत्ति आदि दुर्गुणों की शिकायत भी स्वामीजी तक पहुंच चुकी थी। परन्तु उन्हें स्वयं प्रत्यक्ष देखनेका अवसर कभी न हुआ था। एक बार महाराजा प्रतापसिंह स्वामीजीको अपना महल दिखाने ले गये। उस समय महाराजा यशवंतसिंहकी वेश्या नन्ही भगतन भी वहां आयी हुई थी। स्वामीजो को महलमें आया हुआ देखकर महाराजा घबरा गये और बहुत जल्दीसे नन्हीकी पालकी वहांसे उठाये जानेकी आज्ञा दी। देर होते देखकर घबराहटमें उन्होंने पालकीको अपना कन्धा भी लगा दिया। यह लीला देखकर स्वामीजीको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने महाराजसे कहा कि 'क्षत्रिय सिंह समान हुआ करते हैं। उनके घरमें

दर दर फिरने वाली कुतियाके आनेकी क्या आवश्यकता है ?' नन्हीने यह सुन लिया और उसी समय स्वामीजीको विष दिलानेका मनमें प्रण कर लिया। नन्हीका राज्यमें प्रभाव बहुत बढ़ा हुआ था। उसने स्वामीजीके रसोइये जगन्नाथको बहुत सा रुपया देकर उससे दूधमें पिसा हुआ कांच मिलवा कर वह दूध स्वामीजीको पिलवा दिया। स्वामीजी अगले दिन ही पहचान गये थे। परन्तु विष-दाताको भी अपने उदार स्वभावसे उन्होंने रुपया देकर चुपचाप राज्यसे भगा दिया। इस विषके कारण स्वामीजी बहुत रोगी हो गये। अनेक योग्य डाक्टरों वैद्यों और हकीमोंकी दवा हुई। परन्तु कुछ फल न निकला। कार्तिक अमावास्या संवत १९४० को अजमेरमें अपने अनेक प्रमुख शिष्योंकी उपस्थितिमें स्वामी दयानन्द इस अनित्य शरीरको त्यागकर परलोक धाम सिधारे।

धर्मवीर पं० लेखराम.

धर्मवीर पं० लेखरामका जन्म पञ्जाबके जिला जिहलमके सैयदपुर नामक ग्राम में महता तारासिंहके घर ति० ८ चैत्र सं० १९१५ वि० शुक्रवारके दिन हुआ था। आरम्भमें अपने ग्रामकी पाठशाला में ही इन्होंने फ़ारसी अक्षरोंका अभ्यास किया और बादको वहीं एक हिन्दू मुंशीसे अरबी फ़ारसी पढते रहे। १५ वर्षकी आयुमें यह अपने चचा महता गण्डारामके पास, जो कि पेशावरमें पुलीसमें नौकर थे पुलीसका काम सीखने चले गये। इसी कामको सीखते सीखते इनकी धार्मिक विषयोंमें श्रद्धा दृढ हुई; क्योंकि इस समय इनका सङ्ग एक धर्म-परायण सिखके साथ हो गया और यह उसकी देखादेखी प्रातःकाल शीघ्र उठना, स्नान शौचादिसे निवृत्त हो गीताका पाठ करना, समाधि लगाना आदि क्रियायें करने लगे। इसी समय उनको पुलीसमें नौकरी भी मिल गयी और धीरे धीरे धीरे उन्नति करते करते आप नक्शानवीस सारजेंटके पदतक पहुंच गये। इस सब समयमें धार्मिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त सामयिक पत्रों के भी धार्मिक विषयोंको चर्चा सम्बन्धी लेखोंको पढ़ते रहते थे। इन्हीं लेखोंसे उनको स्वामी दयानन्दके विचारों और ग्रन्थोंका परिचय मिला। बस, उनके ग्रन्थोंको भी मंगाकर पढा। उस समय जो शंकायें हुई उनको निवृत्त करनेके विचारसे और इन गूढ ग्रन्थोंके लेखक महापुरुषके दर्शन करनेकी उत्सुकतासे आप संवत १९३७ में अजमेर गये और वहां जाकर ता० ११ मईके प्रातःकाल ऋषि दयानन्दके दर्शन किये। धार्मिक श्रद्धा इतनी बढी हुई थी कि पेशावरसे चलकर अजमेर पहुंचने तक रास्तेमें जितनी आर्यसमाजें आयीं सबमें ठहरते और वहांके आर्य भाइयोंसे मिलते तथा धार्मिक चर्चा करते गये। इससे पहिले ही यद्यपि स्वयं आर्यसमाजी बनकर पेशावरमें आर्यसमाज स्थापित

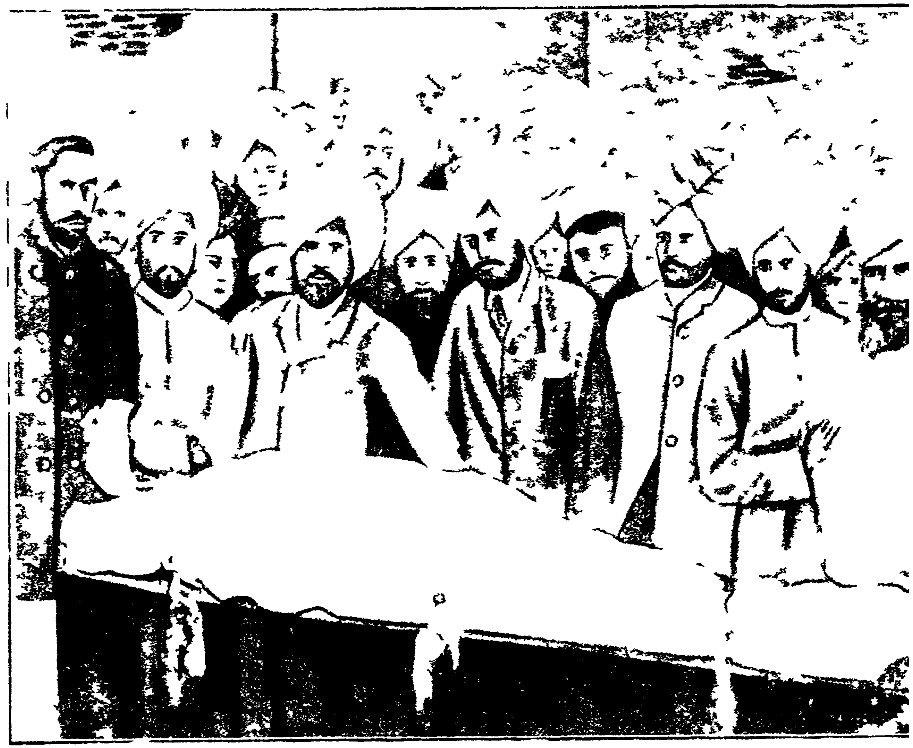


धर्म्मवीर पं० लेखरामजी आर्य्यमुसाफिर

बलिदान-चित्रावली—



पण्डित लेखराम और घातक



पण्डित लेखराम मृत्युशय्या पर ।

कर चुके थे, तथापि सत्यकी खोजकी लगन इतनी थी कि हिन्दू धर्मके अतिरिक्त इसलाम आदि अन्य धर्मों के ग्रन्थोंका भी ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया।

पं० लेखरामजीका पुलीसमें नौकर करते हुए बहुधा अपने सहकारी अथवा अपनेसे उच्च मुसलमान कर्मचारियोंसे विवाद हो जाया करता था और पं० लेखराम निर्भीकतासे बिना किसी लिहाज़के सबको लताड़ दिया करते थे इस कारण उनको उच्च अधिकारी कष्ट देने लगे। तब उन्होंने पुलीसकी नौकरी छोड़कर धर्मकी ही सेवा करनेका निश्चय कर लिया।

पुलीसकी नौकरी छोड़कर पेशावरसे सीधे लाहोर पहुंचे और वहीं रह कर संस्कृतका अध्ययन आरम्भ कर दिया तथा जब जहां कहींसे किसी हिंदूके मुसलमान या ईसाई होनेकी खबर सुनते अथवा धर्मपर अन्य किसी प्रकारका आक्रमण होते देखते तो स्वयं तुरंत वहां पहुंचकर अपने धर्मका पक्ष समर्थन करते। उनके इस धार्मिक उत्साहको देख कर उन्हें फ़िरोज़पुरके आर्यसमाजियोंने अपने यहां से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'आर्यगजट'का सम्पादक बनाया। अभी कुछ काल ही यह कार्य किया था कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने पं० लेखरामजीसे प्रार्थना की कि आप ऋषि दयानन्दके जीवनकी खोजका कार्य अपने ऊपर लें। बस, धर्मके सच्चे सेवक पं० लेखराम फिर लाहोर पहुंच गये और आर्य प्रतिनिधि सभाके आदेशानुसार देश भरमें घूम घूम कर वैदिक धर्मका प्रचार और ऋषि दयानन्दके जीवन सम्बन्धी घटनाओंकी खोज करने लगे। आप धर्म-प्रचारके समय अपने विरोधियोंकी बातोंका खण्डन बहुत ही उत्तमता और जोरसे किया करते थे। इसलाम धर्मका आपने खूब अध्ययन किया था। इस कारण मुसलमान मुल्ला मौलवियोंकी बातोंका आप मुंहतोड़ जवाब दिया करते थे। उन्होंने इन मौलवियोंकी बातोंके खण्डनमें अनेक ग्रन्थ भी लिखे थे। पं० लेखराम के इन सब प्रयत्नोंके फल स्वरूप बहुतसे मुसलमानोंने वैदिक धर्म स्वीकार किया। मुसलमान मुल्ला मौलवी पं० लेखरामकी इस सफलतासे चिढ़ कर उनके शत्रु बन गये और उनकी लिखी पुस्तकोंके विरुद्ध अदालतोंमें दावे चलाकर उनको दबानेका यत्न करने लगे। इस प्रकारके आठ दस दावे उन पर भिन्न भिन्न अदालतोंमें किये गये परंतु सभीमें मुसलमानोंको असफलता हुई। अब मुल्ला मौलवियोंने खिसियाकर एक क्रूर मुसलमान जल्लादको पं० लेखरामके पीछे लगाया। वह पं० लेखरामके पास शुद्ध होनेका बहाना कर के आया और उन्हींके साथ रहने लगा। पं० लेखराम उसको लेकर इतने मस्त थे कि कई मित्रों और हितचिन्तकोंके सावधान करनेपर भी इस छद्म-वेष-धारी जल्लादका ही पक्ष लेते रहे। यह जल्लाद मौका तो देख ही रहा था, ६ मार्च सन १८९७ की सायंकाल जब पं० लेखराम ऋषि दयानन्दका जीवन समाप्त करके अपनी चारपाईसे उठकर अंगडाई लेने लगे तभी जल्लादने उनके पेटमें छुरी घुसेड़ कर उनके प्राणों का अत्यन्त क्रूरतासे अन्त कर दिया।

पं० तुलसीराम

पं० तुलसीरामजी पंजाब प्रदेशकी रियासत फरीदकोटके निवासी थे। यह एन०डब्लू० रेलवेमें स्टेशन मास्टरका कार्य करके अपनी आजीविका करते थे। इनका जैनियोंसे धार्मिक विषयोंपर प्रायः विवाद हुआ करता था और इनके तर्क से परास्त हो कई जैनी इनसे चिढे रहा करते थे। एक दिन यह कहीं अकेले जा रहे थे। स्थान निर्जन था इससे अपने पाशविक कृत्यके लिये अनुकूल अवसर समझकर एक जैनीने लाल मिरचोंके चूरेसे पिसा बारूद इनको आंखोंमें झोंक कर इनको देखनेमें असमर्थ कर दिया और तब ऊपरसे कई जैनियोंने इनको लाठियोंसे बहुत मारा तथा बेहोश हालतमें वहीं छोड़ कर भाग गये। पुलीस तथा आर्य भाइयोंको खबर लगने पर वे इन्हें उठाकर असपताल ले गये। बहुत औषधोपचार किया परन्तु सब व्यर्थ हुआ और वह जैनियोंके 'अहिंसा धर्म' का अजीब नमूना पेश करते हुए भौतिक शरीरको छोड़ कर स्वर्गधाम सिधारे।

म० रामचन्द्रजी

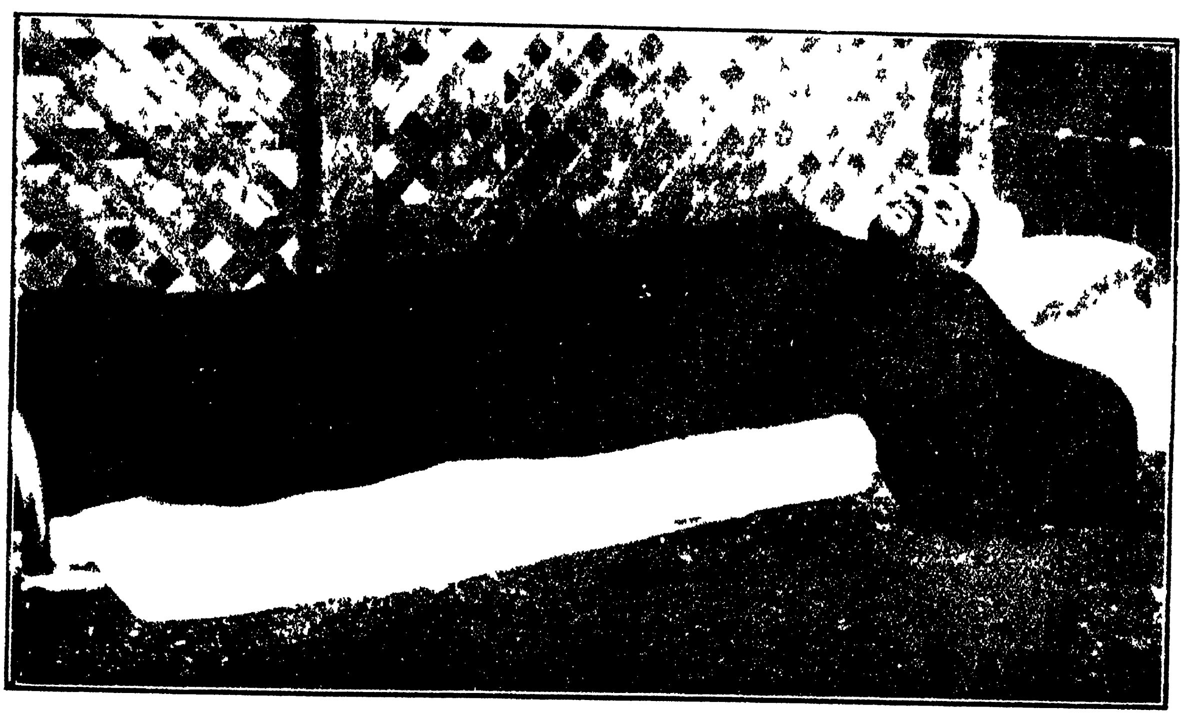
म० रामचन्द्रजी रियासत काश्मीरके जम्बू नगरके निवासी तथा एक महाजनके सुपुत्र थे। इनका जन्म संवत १९५३ विक्रमी में हुआ था। यह वहीं की तहसीलमें खजानचीका काम करते थे। यों तो आप आर्यसमाजके साधारण सभासद थे परन्तु वैदिक धर्मकी लगन अपूर्व थी। अपने बाल्यकालसे ही दलित (अछूत) भाइयोंकी दुर्दशापर दुःखी रहा करते थे। जब इनकी बदली जम्बूसे अखनूरको हुई तब इन्होंने दलितोद्धारका कार्य विशेष रूपसे अपने हाथमें लिया। अखनूरके पास बुटेहरा एक ग्राम है। पहिले वहींके मेघोंमें वैदिक धर्मके प्रचारका कार्य आरम्भ किया। आप वहां मेघ बालकोंके लिये एक पाठशाला खोलना चाहते थे। इसका उक्त ग्रामके राजपूतोंने प्रबल विरोध किया और नौबत यहां तक पहुंची कि बेचारे रामचन्द्रजी पर आक्रमण करके लाठियोंसे मार मारकर उनका शरीरांत ही कर डाला। परंतु जो कार्य उनके जीते हुए उनकी मेहनतसे न हो सका था वह उनके बलिदानसे स्वयं सिद्ध हो गया। जो राजपूत पहिले उनके विरोधी थे उन्होंने ही पाठशालाओंके लिये भूमि और मेघोद्धारके लिये धन दिया। अब रियासतके उस भाग में २०००० से अधिक मेघ वैदिक धर्मकी शरण में आ चुके हैं, १५ से अधिक आर्यसमाजें और कई पाठशालायें खुल गयी हैं।



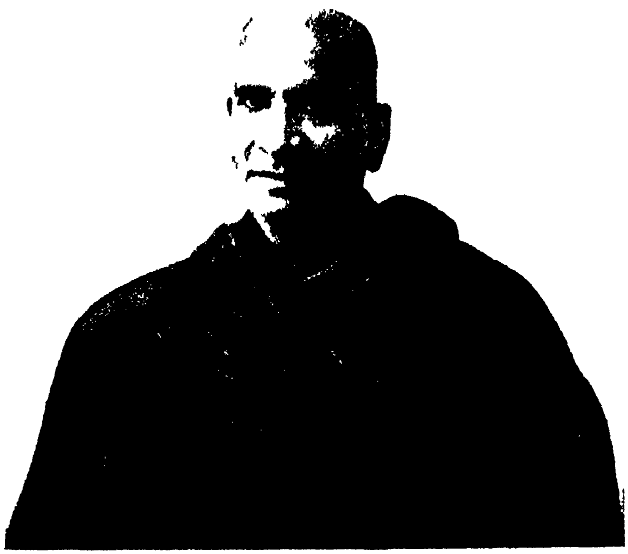
धर्म्मवीर तुलसीरामजी।



धर्म्मवीर रामचन्द्रजी।



धर्म्मवीर रामचन्द्रजी मृत्यु शय्यापर अस्पतालमें मूर्च्छित अवस्था में



स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ।

जन्म सं० १९१३ मृत्यु सं० १९८३ ।

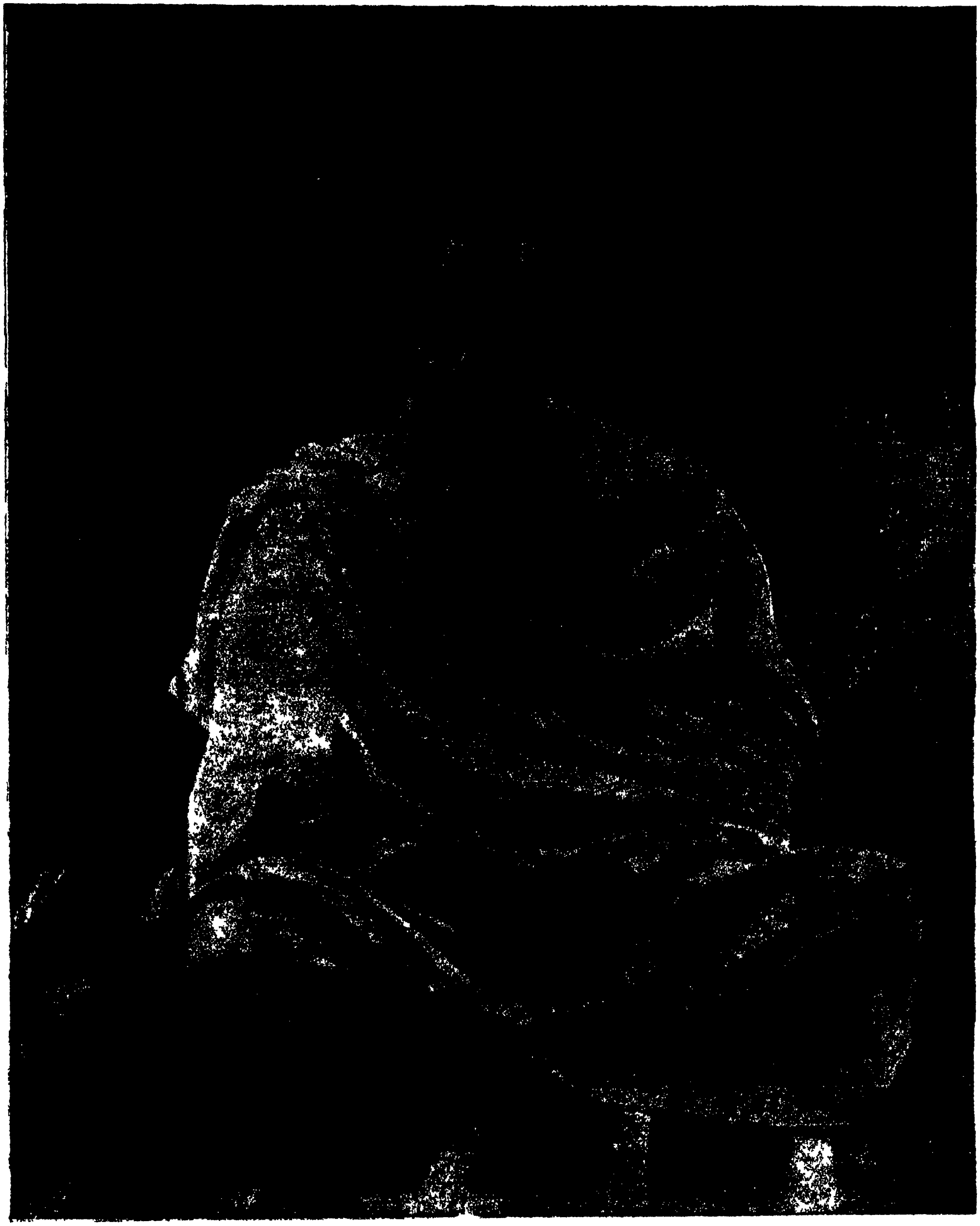
निर्भीक सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द

आजकल जब कि भारतवर्ष और विशेषतः हिन्दू जाति अपनी बुज़दिली और बेअसूलेपनके लिये दुनियामें बदनाम हो रही है, यदि किसी आदमीने अपने सिद्धान्तकी दृढ़ता और व्यवहार की निर्भीकताका उदाहरण उपस्थित किया है तो वह निर्भीक सन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द हैं। आप का जन्म जिला जालन्धर (पञ्जाब) के ग्राम तलवनमें फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी संवत १९१३ में लाला नानकचन्दजीके घर हुआ था, जो कि संयुक्त प्रांतकी पुलीसमें नौकर थे। जन्मके समय आपका नाम मुंशीराम रखा गया था और पीछे संवत १९७३ के अंतमें सन्यास लेने पर आपने अपना नाम श्रद्धानन्द रख लिया। आपके बाल्यकाल और शिक्षणका समय अधिकतर बरेली, बदायूं, बनारस, बांदा और बलिया आदि संयुक्त प्रांतके शहरोंमें बीता और वहीं बनारसके क्वीन्स कालिज और इलाहाबादके सेण्ट्रल कालेजमें आपका शिक्षण हुआ। शिक्षाके अनन्तर आपके पिताने आपको भी पुलीसकी नौकरीमें भरती कराकर बरेलीका नायब तहसीलादार बनवाया परंतु आपके स्वात्माभिमान और आत्मसमानके भावोंने आपको उस नौकरीपर तीन माससे अधिक न रहने दिया। इसके अनन्तर आपने लाहोर जाकर वकालत पास की और जालन्धरमें वकालत शुरु कर दी। लाहोरमें रहते हुए ही आपको आर्यसमाजके सब सिद्धान्तोंमें विश्वास हो चुका था इस कारण आप संवत १९४१ के माघ मासमें आर्यसमाजी बन गये थे और उसके बादसे ही तन मन धनसे आर्यसमाज के सिद्धान्तोंका प्रचार और समर्थन करते रहे। यह कार्य आपने इतनी योग्यता और प्रबलतासे किये कि आप शीघ्र ही आर्यसमाजके सबसे प्रमुख नेता माने जाने लगे और आपके त्याग और शुद्धाचारके लिये जनताने आपको महात्मा की उपाधि दी। संवत १९५८ में महात्मा मुंशीरामजीने वैदिक सभ्यताके पुनरुद्धार, आर्य साहित्यके प्रचार और ब्रह्मचर्यके पुनरुज्जीवनके महत्व तथा आवश्यकताको अनुभव करके भारतवर्षके प्रसिद्ध राष्ट्रीय शिक्षणालय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी (हरिद्वार) की स्थापना की। इस संस्थाके संस्थापन और संचालनके लिये आपने इतना श्रम, इतना त्याग, और इतना साहस किया है कि इसे आपके जीवनका मुख्य काम कहना चाहिये।

संवत १९७४ के आरम्भमें आपने सन्यास ले लिया और गुरुकुलको छोड़कर अपनी सार्वजनिक सेवाओंके क्षेत्रको विस्तृत बना लिया। आप की सन्यासावस्थाके १० वर्षका जीवन इतनी अधिक घटनाओं और आपकी इतनी अधिक सार्वजनिक सेवाओंसे परिपूर्ण है कि उनका नामनिर्देशमात्र

करनेसे बहुत लिखना पड़ेगा। ब्रह्मचर्यका उपदेश, आर्यसमाजका इतिहास लिखनेके लिये सामग्रीका संग्रह, गढ़वालमें दुर्भिक्ष-पीड़ितोंकी सहायता, रौलट एक्टका आन्दोलन, देहलीमें जनता और नौकरशाहीके नौकरोंमें शान्तिकी स्थापना, हिन्दू-मुसलिम एकता का सम्पादन, पंजाबके फौजी कानूनसे पीड़ीतोंको सहायता और सान्त्वना, अमृतसर कांग्रेसका प्रबन्ध और उसे सफल बनाना, गुरुकुल कांगड़ीके अव्यवस्थित प्रबन्धको सम्भालना, हिन्दू सङ्गठन, अछूतोद्धारके प्रश्नका कांग्रेसमें प्रवेश, इस विषयमें महात्मा गांधीका मत-परिवर्तन, राष्ट्रीय शिक्षाके लिये आन्दोलन और कई राष्ट्रीय स्कूलोंका खोलना, देहलीके आसपास अछूतोद्धार, मद्रासके अब्राह्मणोंमें आर्यसमाजका प्रचार, सिखोंकी गुरुद्वारा आन्दोलनमें सहायता, शुद्धि और संगठन इत्यादि इतने कार्य हैं कि उनका दो चार क्षणमें पूरा गिनना तक करना कठिन है।

सारांश यह कि स्वामी श्रद्धानन्दके स्वभावका यह अङ्ग बन गया था कि वह जिस कामको हाथमें लेते उसे ऐसी दृढ़ता और प्रबलतासे करते थे कि थोड़े ही समयमें उसका फल दृष्टिगोचर होने लगता था और यदि उस कार्यके कोई विरोधी होते थे तो उनमें हलचल मच जाती थी। यही कारण है कि उनके धड़ल्लेके साथ मलकानों को गांव पर गांव शुद्ध करने और हिन्दुओं को जागृत कर देनेके कार्यने बहुतसे ईर्ष्यालु और कमीने मुसलमानोंके हृदयोंको दहला दिया था और वे गुमनाम चिट्ठियों, अखबारोंके लेखों और छोटी छोटी पुस्तिकाओं द्वारा स्वामीजीको खून कर देनेकी धमकियां देने लगे थे। स्वामीजीने अपने धीर गम्भीर स्वभावसे इन निकम्मी धमकियोंपर ध्यान तक नहीं दिया। परन्तु वीरता और न्याय के शत्रु कमीने लोग अदृश्य रूपसे विष घोल रहे थे और उसका परिणाम ता० २३ दिसम्बर सन १९२६ ई० के दिन शामको चार बजे तमाम हिन्दू जाति और उनके राष्ट्र हिन्दुस्थानको भोगना पड़ा। दिसम्बर मासके आरम्भमें स्वामीजी निमोनिया रोगसे पीड़ित हुए थे। वह अभी रोगसे मुक्त होकर तकियेके सहारे बिस्तरमें बैठने योग्य हो हुए थे कि अबदुलरशीद नामके एक कमीने कायर क्रूर कुटिल कुचाली मुसलमानने असन्त कुटिलतासे स्वामीजी तक पहुंचकर उनकी निर्बल छातीमें पिस्तौलसे तीन गोलियां मारकर उनके अमूल्य जीवनका अन्त कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द इस प्रकार एक वीर पुरुषकी भांति छातीमें गोली खाकर मारे गये और जाते हुए हिन्दू जातिको सिद्धांत पर प्राण न्योछावर करनेका अमूल्य पाठ पढ़ा गये।



श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज।

जन्म फाल्गुन कृ० १२ सं० १९१२ वि०   मृत्यु पौष कृ० ४ सं० १९८३ वि०

SWAMI SHRADHANAND.



गुरुकुल कांगड़ीके सर्वप्रथम आश्रम

श्री महात्मा मुन्शीरामजी और भण्डारी शालिग्रामजी।

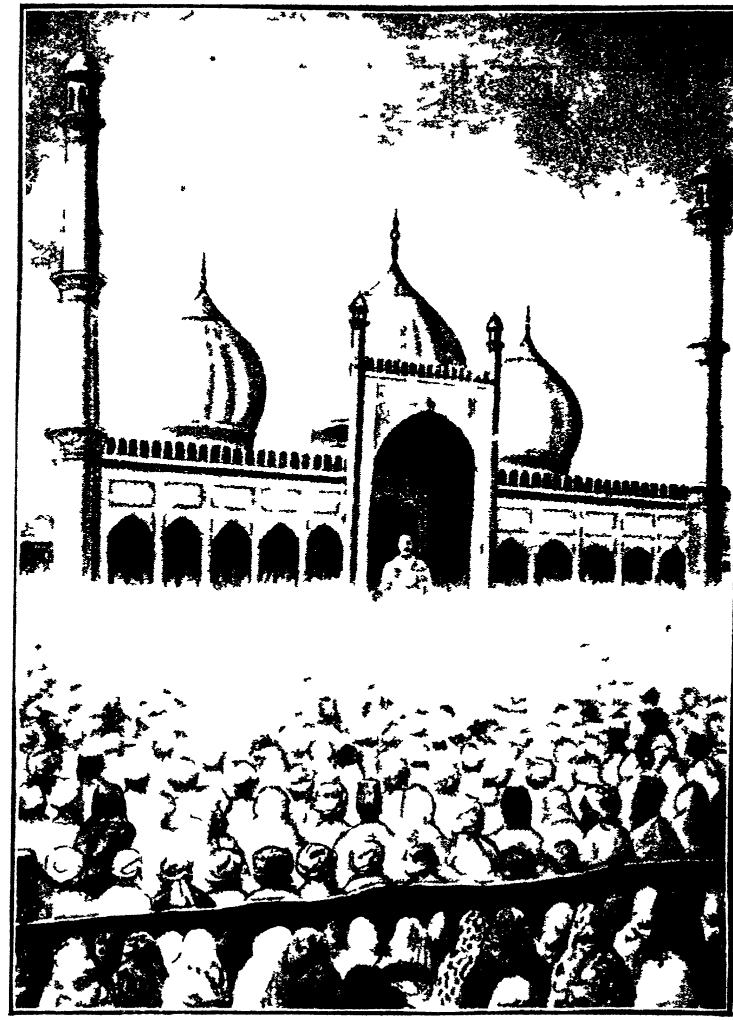


गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) का वर्तमान

महाविद्यालय भवन।



संवत १९७५ के अन्तमें रौलट एक्ट आन्दोलनके समय देहली घण्टाघरके नीचे स्वामीजीके साहसका एक अपूर्व दृश्य।



१९७५ में स्वामीजीका देहली जामा मसजिकी ईपर से उपदेश।



शाहपुराधीशजी सहित स्वामी श्रद्धानन्दजीका शुद्ध हुए मलकानोंके साथ सहभोज
स्थान वृन्दावन ज्येष्ठ सम्वत् १९८० ।

